

संस्थागत ज्ञान, शिक्षणशास्त्र और विद्यालयों में व्यवहारवादी जड़ता

अजय सिंह*

गुंजन शर्मा*

यह लेख भारतीय विद्यालयों में मौजूद व्यवहारवादी शिक्षणशास्त्रीय परिपाटियों पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी प्रस्तुत करता है। जो विद्यालयों के अवलोकन से प्राप्त अनुभवों के आधार पर यह समझाने का प्रयास करता है कि विद्यालयों में व्याप्त व्यवहारवादी जड़ता, शिक्षणशास्त्रीय परिपाटियों, शिक्षाई नवाचारों और संस्थागत ज्ञान में कैसा संबंध है। साथ ही, यह लेख विद्यालयों में नवाचारों के बजाय व्यवहारवादी जड़ता को प्रस्तुत करता है और इस जड़ता के कारणों को समझाने का प्रयास करता है। अंत में यह लेख राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आधार पर इस जड़ता से पनपी समस्याओं के समाधान को प्रस्तुत करता है।

भारत में विगत तीन दशकों के दौरान शिक्षा विमर्श में कई स्तरों पर बदलाव आए हैं— विशेषतौर पर सीखने और शिक्षणशास्त्र के संबंध में। इस दौर में रटने के स्थान पर ज्ञान सृजन और कक्षा में बच्चों की सहभागिता पर जोर दिया गया है। भारतीय शिक्षाविदों ने जिस तरीके से पाठ्यचर्या की अवधारणा को विकसित किया, वह पहले के मुकाबले विशेष रूप से अलग है। साथ ही, नीतिगत स्तर पर ऐसी पहल दिखी कि विद्यालयों में परंपरागत तौर से चले आ रहे शैक्षिक व्यवहारों में हस्तक्षेप किया जाए। इन पहलों को अकादमिक जगत ने भी अपनी प्रगतिशीलता की पहचान के तौर पर दर्ज किया। सरकार और सिविल सोसाइटी के साझे प्रयासों से इन पहलों के माध्यम से विद्यालयों में बदलाव की शिक्षणशास्त्रीय कोशिश भी हुई। विद्यालयों में शिक्षणशास्त्रीय बदलाव के जो

प्रयास किए गए उसका कुछ प्रभाव पाठ्यपुस्तकों, प्रदर्शन पट्टिकाओं और विद्यालय की दीवारों पर तो दिखा (शर्मा, 2015), पर शिक्षणशास्त्र प्रायः ज्यों का त्यों बना रहा। परीक्षा और विद्यार्थियों के आकलन के तौर-तरीकों में भी बदलाव कम ही दिखा (नवानी, 2020)। इस दौरान कोचिंग का बाजार भी बढ़ा और उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए अंक भी बढ़ते रहे हैं। इन प्रक्रियाओं ने अब नीतिगत समस्या का रूप ले लिया है। इसकी चिंता राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी परीक्षाओं के बोझ और भय को लेकर दर्ज की है और परीक्षा के तौर-तरीकों को बदलने का सुझाव दिया है (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 2020)।

दूसरी ओर प्रगतिशील पहलें अभी भी कुछ शिक्षक-प्रशिक्षकों के बीच बनी हुई हैं (शर्मा, 2021)। नीतिगत पहलों और नवाचारों के केंद्रीय

*एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा अध्ययनशाला, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, दिल्ली 110068

**सहायक प्रोफेसर, स्कूल ऑफ़ एजुकेशन स्टडीज, डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, लोधी रोड कैम्पस, नई दिल्ली 110003

विचार भारतीय कक्षा के भीतर मौजूद जड़ता या जड़ता से टकराकर लौटते रहे हैं। शिक्षण-अधिगम में 'गतिविधि', 'खोज', 'सहभागिता', 'अन्वेषण' जैसे प्रयासों के बीच, 'परंपरागत' व्यवहारवादी परिपाटी अभी भी भारतीय विद्यालयों और जनमानस में प्रभुत्व बचाए हुए है। यह विडंबना इस प्रश्न के उत्तर की माँग करती है कि विद्यालयों में अभी भी ये रूढ़िवादी शिक्षणशास्त्रीय परिपाटी क्यों मौजूद है?

विद्यालय में व्यवहारवादी परिपाटी के दो उदाहरण

शिक्षा में नवाचार पर पिछले दो दशकों में कई शोध हुए हैं (बरिकमन्न 2019; स्माइल, 2014; श्रीप्रकाश, 2012)। ये शोध दर्शाते हैं कि शिक्षण की व्यवहारवादी परिपाटी विद्यालयों में बाल-केंद्रित शिक्षा जैसे नवाचारों के बाद भी बनी हुई है। कर्नाटक के ग्रामीण संदर्भ में श्रीप्रकाश (2012) ने शिक्षाई नवाचार, विशेष रूप से बाल-केंद्रित शिक्षा के स्वरूप और प्रक्रिया का अध्ययन किया और उन्होंने शिक्षाई नवाचार पर कई प्रश्न उठाए हैं जिनमें से प्रमुख हैं—

- 1) क्या भारतीय संदर्भ में ये नवाचार उपयोगी हैं?
- 2) क्या ये नवाचार, सामाजिक असमानता से जुड़ी समस्याओं और उनसे जुड़ी शिक्षा की गुणवत्ता के सवाल को हल कर सकते हैं? राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी गुणवत्ता और सामाजिक असमानता के प्रश्न को शिक्षा की मुख्य समस्या के रूप में देखा है और पाठ्यचर्या में सुधार की अनुशंसा की है।

इन्हीं सवालों के संदर्भ में, सरकारी और निजी विद्यालयों में किए गए नृवंश-शास्त्रीय (एथनोग्राफी) अवलोकनों के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। इस शोध अध्ययन को यह समझने के लिए किया

गया था कि शिक्षक बाल-केंद्रित नवाचारों को कक्षा में कैसे ढालते हैं और इस प्रक्रिया में उन्हें किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?

उदाहरण 1— कक्षा नौवीं, एक निजी विद्यालय (शिक्षिका हिंदी एवं अंग्रेजी बोल रही हैं। विद्यार्थी भी अंग्रेजी-हिंदी मिलाकर बोल रहे हैं।) विषय— अर्थशास्त्र, प्रकरण— गरीबी।

अध्यापिका— आपको लास्ट टाइम बताया था कि पॉवर्टी का मानदंड क्या है?

कक्षा— येस, मैम।

अध्यापिका— अंकित तुम बताओगे।

अंकित— अर्बन एरिया 2100 कैलोरी, रूरल एरिया 2400 कैलोरी

अध्यापिका— ठीक है। अच्छा अब आप बताओ पॉवर्टी के लिए सबसे ज्यादा वलनरेबल कौन होते हैं?

अंकित— भूल गया।

अन्य छात्र— एससी/एसटी/ओबीसी और डिप्राइव्ड कम्युनिटीज

अध्यापिका— ठीक

एक छात्र— मैम ये कैलोरीज के लिए चॉकलेट क्यों नहीं खाते?

अध्यापिका— अरे! कोई कैलोरी के लिए चॉकलेट खाएगा?

दूसरा छात्र— मैम ये एससी/एसटी कौन होते हैं और इनको कैसे मदद दी जा सकती है?

अध्यापिका— एससी/एसटी वे जातियाँ/जनजातियाँ होती हैं, जिन्हें भारतीय संविधान द्वारा सूचीबद्ध किया गया है तथा उनके उत्थान के लिए सरकार द्वारा विविध योजनाओं के माध्यम से सहायता प्रदान की जाती है।

दो छात्र— हरिजन मैम?

अध्यापिका— राइट

एक छात्र— अनटचेबल्स?

अध्यापिका— अनटचेबिल्टी पर संविधान ने बैन लगा दिया है।

छात्र— अभी लेकिन प्रैक्टिस में तो होती है, मैम?

अध्यापिका— बहुत ही रीमोट एरियाज में; बहुत कम जगह।

छात्र— अर्थोडोक्स लोग प्रैक्टिस करते हैं।

अध्यापिका— ओके, अब मैं आपको पॉवर्टी की फोटोग्राफ्स दिखाऊँगी और आप उनको डिस्क्राइब करेंगे, इन यॉर ऑन वर्ड।

उदाहरण 2— कक्षा-पाँच हिंदी व्याकरण, प्रकरण लिंग, सरकारी विद्यालय

अध्यापिका— बच्चों आप में से कौन बताएगा लिंग क्या होता है?

कक्षा— मैडमजी, लिंग का मतलब दो प्रकार के, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग... स्त्रीलिंग मतलब— लड़की, औरत, बच्ची... पुल्लिंग मतलब— आदमी, लड़का, बच्चा।

अध्यापिका— वैरी गुड; लेकिन पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में सिर्फ व्यक्ति ही नहीं चीजें भी होती हैं, जैसे— पेड़, पर्वत, पुल्लिंग... टेबल, कलम, स्त्रीलिंग।

अध्यापिका— अब आपको मैं पुल्लिंग बताऊँगी उसका आप स्त्रीलिंग बताना।

अध्यापिका— ब्राह्मण...

बच्चे— ब्राह्मणी...

अध्यापिका— धोबी, आपने धोबी देखा है? उसकी पत्नी को क्या कहते हैं?

बच्चे— धोबिन...

अध्यापिका— माली...

बच्चे— मालिन...

एक बच्चा— मैडम जी, इसके पापा माली हैं।

दूसरा बच्चा— मैडम जी, इसके पापा धोबी हैं।

तीसरा बच्चा— मैडम जी, इसके पापा पंडित हैं; लड्डू खाते हैं।

अध्यापिका— शोर नहीं। सबको पता है न शोर करने पर प्रिंसिपल सर क्या करते हैं? चलो, अब हम एक गेम खेलेंगे, आप कॉपी का नया पेज निकालो, बीच में लाइन डालो, अब मैं आपको चित्र दिखाऊँगी, आप उसका स्त्रीलिंग-पुल्लिंग लिखेंगे। जो सही जवाब लिखेगा उसको चार्ट पर स्टार मिलेगा।

छात्रा— मैडम, रमन जी ने मेरा स्केल ले लिया।

छात्र— मैडम जी, यह झूठी नंबर एक है।

अध्यापिका— तुम दोनों का ध्यान गेम में नहीं है ना? प्रिंसिपल सर आएँगे तो मुझे मत कहना।

छात्र— मैमजी, मैं कॉपी नहीं लाया।

अध्यापिका— शोर नहीं।

इन दोनों उदाहरणों में शिक्षकों ने किताबी ज्ञान और निर्धारित सूचनाओं को ही कक्षा की प्रक्रिया का हिस्सा बनाया, परंतु बच्चों के सामाजिक अनुभव को कक्षाई ज्ञान के केंद्र में रखने के अवसरों को नज़रअंदाज किया है। साथ ही उन्होंने निर्धारित ज्ञान को केंद्र में स्थापित करने के लिए व्यवहारवादी परंपरा के तरीकों— जैसे 'गुड' कह कर सकारात्मक पुनर्बलन या 'प्रधानाध्यापक के डर' के ज़रिए नकारात्मक पुनर्बलन का सटीक प्रयोग किया है। शिक्षकों की विषयगत और सामाजिक समझ की कमी और इनके बीच के अंतर भी इन उदाहरणों में

दिखते हैं। उपरोक्त उदाहरणों के अवलोकनों का विश्लेषण बताता है कि भारतीय समाज में हो रहे शिक्षाई नवाचार व प्रगतिशील पहलें कक्षा में अलग ही स्वरूप ले रहे हैं।

यहाँ पर इस विश्लेषण का उद्देश्य शिक्षक की कमी बताना नहीं है, बल्कि उस संदर्भ को रेखांकित करना है, जो नवाचार के दबाव से बना है। इस क्रम में शिक्षकों से बातचीत के दौरान उन्होंने बताया कि शिक्षक-प्रशिक्षण की पाठ्यचर्या और अपने वास्तविक काम में अधिक अंतर है। इस विषय पर हुए शोध भी इस अंतर की पुष्टि करते हैं (शेट्टी 2014; शर्मा 2021)। साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी इस पर चिंता व्यक्त की और शिक्षक-शिक्षा में बड़े बदलाव की रूपरेखा प्रस्तुत की। इस विडंबना की पड़ताल यह माँग करती है कि हम प्रगतिशील पहलों की बुनियादी मान्यताओं और उसकी राजनीति को अपने विमर्श का हिस्सा बनाएँ।

इस मामले को हम यहाँ दो तरीकों से परखेंगे। पहला, हम यह देखेंगे कि विद्यालयों में प्रचलित व्यवहारवादी परिपाटियाँ आखिर ऐसा क्या मुहैया कराती हैं कि तमाम प्रगतिशील 'सुझाव' इनमें बहुत कम बदलाव कर पाते हैं। दूसरा, हमें प्रगतिशील आंदोलनों को आलोचनात्मक नज़रिये से परखना होगा ताकि हम जाँच कर सकें कि इन प्रगतिशील पहलों में वो कौन-सी रिक्तता है, जहाँ रूढ़िवादी व्यवहारवादी परिपाटियाँ साँस लेती हैं।

व्यवहारवादी परिपाटी की सहजता

इन सवालों के उत्तर की खोज में अगर हम अपने स्कूली दिनों पर गौर करें तो पाते हैं कि कई ऐसे गुण जिन पर हम 'गर्व' करते रहे हैं, वे दरअसल

हमें ढाँचा करने के प्रयासों या हम पर आजमाये गए अन्य व्यवहारवादी तकनीकों के परिणाम हैं। जैसा कि इस लेख के लेखकों ने महसूस किया कि 'समय की पाबंदी' एक ऐसा व्यवहार है, जिसका पालन हम शिक्षक की डाँट से बचने के लिए करते थे। गणित के पहाड़े, जिसे हम सब लगभग तोते की तरह गाते रहे हैं और न 'गाने' पर शर्म महसूस करते रहे हैं, उन्हें याद करने की प्रक्रिया से हम सभी अवगत हैं। हम सबने पहाड़ों को कुछ इस तरह से याद किया है कि उन्हें ज्यों का त्यों सुना सकते हैं। याद करते समय इन पहाड़ों या ऐसी ही कई और प्रक्रियाओं को हमने समझा नहीं या बल्कि केवल रटा या कह सकते हैं कि एक विशेष प्रक्रिया द्वारा इस ज्ञान को हमें जबरन सौंप दिया गया। रटने-रटाने की यह प्रक्रिया विद्यालयों के संदर्भ में सामान्य और व्यापक है। इसने न सिर्फ कक्षा की प्रक्रिया को बल्कि यह भी निर्धारित कर दिया है कि ज्ञान क्या है।

व्यवहारवादी परिपाटी बच्चों और हमारे संबंधों में रोज़मर्रा की एक ऐसी आदत है, जिसे हम विद्यालय के बाहर आजमाए जाने वाली कई परिपाटियों में देख सकते हैं। जब हम बच्चे को दिन-प्रतिदिन जीवन में 'दीक्षित' करते हैं, बिना किसी व्यापक संवाद के उसे आँख के इशारे से अनुशासित करते हैं, यह सुनिश्चित करते हैं कि वह विद्यालय में सही समय पर पहुँचे। जब हम 'निर्देश' देकर बच्चों को यह 'सिखाते' हैं कि वो शिक्षकों का 'आदर' करे, या फिर लड़के और लड़कियों को अलग व्यवहार करना बताते हैं; तब हम जाने-अनजाने व्यवहारवाद के मूल्यों और सिद्धांतों का पालन करते हैं। बीते कुछ वर्षों में तो हम बच्चे को 'सृजनशील' तरीके

से सोचना भी रटाने लगे हैं। हमारी ज़िंदगी में ऐसी कई व्यवहारवादी परिपाटियाँ इतने आम और सहज रूप से शामिल हैं कि उन पर कोई सवाल खड़ा नहीं करते। व्यवहारवादी प्रचलनों के प्रति इस सहजता पर कई टिप्पणियाँ हमें अकादमिक विमर्शों में मिलती हैं। इनमें से कुछ पर चर्चा करना शायद हमें अपने सवाल को बेहतर समझने और कई मायनों में इसके संभावित उत्तरों के संदर्भ को समझने में मददगार होगा।

व्यवहारवादी विचार परंपरा

अमेरिका को द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मिली 'सफलताओं' ने यह बताया कि व्यवहारवादी तकनीकें बहुत उपयोगी हैं। इसके बाद अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों में इस तकनीक का महत्व बढ़ता चला गया। अमेरिकी मनोवैज्ञानिकों में कार्यात्मकतावादी एवं व्यवहारवादियों का दबदबा बना। नतीजतन व्यवहारवाद को वैज्ञानिक प्रवृत्तियों वाले अनुशासन की तरह स्वीकारा गया और अंततः इस प्रक्रिया ने अन्य देशों में भी कक्षाओं के भीतर व्यवहारवादी परिपाटियों को बढ़ा दिया (चैपलिन और कारवेक, 1974)। विद्यालयों में व्यवहारवादी परिपाटियों के बढ़ने का अन्य कारण सामाजिक-राजनैतिक रहा है। नीति-निर्माताओं ने शिक्षा और स्कूलीकरण को अपनी विचारधाराओं के प्रचार के आधार के तौर पर देखा और इसको उन्होंने 'बेहतर नागरिक' बनाने की राज्य की कोशिशों का हिस्सा बनाया। ये 'बेहतर' नागरिक वे होते हैं, जो नियमों का पालन करते हैं, टैक्स देते हैं और राज्य की बेहतरी के लिए काम करते हैं। इन उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए स्कूली शिक्षा में ऐसे उद्देश्य शामिल किए गए जिन्हें व्यवहारवादी परिपाटियों से हम आसानी से प्राप्त कर सकते हैं (नवानी, 2020)।

'व्यवहारवादी परिपाटी' एक जड़ सांस्कृतिक माँग है, जिसके ज़रिए हम एक ही सार्वभौम तरीके का प्रयोग कर सभी बच्चों की ज़रूरत पूरा करना चाहते हैं। यह एक ऐसा 'अवसर' मुहैया कराता है जिसके सहारे हम किसी बच्चे या बच्चों के समूह द्वारा किए जाने वाले प्रतिरोध को उसकी निजी समस्या घोषित कर देते हैं (जीरो, 2001)। फिर कोशिश यह होती है कि एक बड़ी कक्षा को एक इकाई की तरह 'मैनेज' (प्रबंधन) किया जाए और कुछ अन्य तकनीकों का प्रयोग किया जाए। यह उपाय ज्यादा सुविधाजनक और आर्थिक नज़रिये से 'दक्ष' मालूम पड़ता है (चैपलिन और कारवेक, 1974)।

ऊपर दिए गए कारण और तर्क केवल इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि शिक्षा परिपाटियों में व्यवहारवाद का प्रभुत्व क्यों है? इसमें अभी इस बात को नज़रअंदाज़ किया गया है कि आखिर इतनी कठोर आलोचनाओं और विकल्प के बावजूद, अभी भी व्यवहारवादी परिपाटियाँ क्यों चल रही हैं? इस प्रश्न पर हम चिंतन कर सकते हैं कि व्यवहारवादी प्रतिमान से निकलने की इतनी प्रबल ज़रूरत होने के बावजूद भी विद्यालयों में यह व्यवहारवादी जड़ता क्यों है? इसके साथ ही जुड़ा एक अन्य प्रश्न है कि जब हम चाहते हैं कि व्यवहारवादी परिपाटियों से बाहर निकले तो इस प्रक्रिया के प्रतिरोध की प्रकृति क्या है? इसका उत्तर कुशिमारो (2002) के लेख से मिलता है। यह लेख बताता है कि बदलाव की इच्छा का टकराव एक ऐसे प्रतिरोध से होता है, जहाँ शिक्षाई परिपाटियों में निहित कुछ संदर्भ और सामाजिक संबंधों पर कोई प्रश्न नहीं किया जाता है। दरअसल लोग बहुधा यह मानते हैं कि विद्यालय और समाज को जैसा होना

चाहिए, उसके लिए कुछ व्यवहार और संबंध ज़रूरी हैं और वे इस संबंध को पहचानने में असफल हो जाते हैं कि किस प्रकार इनका दोहराव विद्यालय और समाज में एक जड़ता को विकसित करता है।

व्यवहारवाद के प्रभुत्व के कारणों का ब्यौरा एक के बाद एक करके दिया जा सकता है, लेकिन इसकी तह तक पहुँचने के लिए हमें व्यवहारवाद के प्रभुत्व और शिक्षा के एक 'वस्तु' बन जाने के गहरे रिश्तों की पड़ताल करनी होगी। स्कूली शिक्षा के इस वर्तमान और प्रचलित रूप की शुरुआत और औद्योगिकीकरण के कारण भारी पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन साथ-साथ शुरू होता है। इनकी तुलना करने के लिए हमें वस्तुओं के उत्पादन की फैक्टरी और विद्यालय को आमने-सामने रखकर देखना होगा (डीवी, 1938)। जैसा डीवी (1938) ने कहा है यहाँ हमें कई समानताएँ दिखाई पड़ती हैं—जैसे कक्षा के रूप में अलग-अलग 'बक्से' जिसका विस्तार छोटी से बड़ी कक्षाओं तक होता है। यह कुछ-कुछ एसेंबली लाइन प्रोडक्शन का प्रारूप है, जहाँ कच्चे माल से अंतिम उत्पाद तक पहुँचा जाता है। प्रत्येक कक्षा में शिक्षक बच्चों में पूर्व निर्धारित जानकारी भरता जाता है। 'डिविजन ऑफ़ लेबर' के सिद्धांत के अनुसार इस काम के लिए विद्यालय में निर्देश पुस्तिकाएँ होती हैं और अंत में गुणवत्ता परीक्षण के लिए सत्र परीक्षा होती है, जिसमें प्रत्येक स्तर पर दोषपूर्ण उत्पादों को बाहर निकाल दिया जाता है। जिसके फलस्वरूप एक मानकीकृत उत्पाद निकलता है (या एक 'बेहतर नागरिक' या फिर एक 'कुशल कामगार') जोकि बाज़ार के लिए तैयार है। यह विद्यालय की एक ऐसी संरचना है, जो बाज़ारीकृत समाज से मेल

खाती है, विशेषकर भूमंडलीकरण के इस युग में जहाँ 'ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था' में बढ़त लेने के लिए विभिन्न देशों के बीच में मानव संसाधन के विकास की होड़ है।

इस उत्पाद को बनाए रखने की क्षमता जितनी व्यवहारवाद में है उतनी अन्य परिपाटियों या नवाचारों में नहीं है। यह कहना गलत नहीं होगा कि समकालीन स्कूली-व्यवस्था की प्रकृति ही ऐसी है कि इसके बुनियादी तत्व व्यवहारवाद में छिपे हुए हैं। ऐसी ही कुछ बात बाईन्डर (1928) ने अपने लेख स्कूल, सोसायटी एंड विहेवरिज़्म में कही हैं कि पिछली शताब्दी के मध्य में व्यवहारवाद अपनाया गया, क्योंकि यह प्रशिक्षण का एक आकर्षक सिद्धांत प्रस्तुत करता है जो नीति-निर्माताओं, शिक्षाशास्त्रियों और व्यवहारकर्ताओं के 'हितों के साथ समझौता' को एक आधार प्रदान करता था। यह औद्योगिक साम्राज्य फोर्डवादी और टेलरवादी की ज़रूरतों से मेल खाता था।

बाईन्डर (1928) आगे बताते हैं, "व्यवहारवादी शिक्षायी संरचना अंतरराष्ट्रीय विचारधाराओं और औद्योगिक परिपाटियों से मेल खाती थी। औद्योगिक माँग के अनुसार, उपागम और तकनीकी में हेर-फेर किया जा सकता था। यह संस्कृति और वंशानुगत कारकों पर आधारित नहीं था इसलिए यह अंतरराष्ट्रीय बाज़ार के लिए एक मानकीकृत शिक्षा के रूप में उपयुक्त था।"

डीवी (1938) ने 'अनुभव और शिक्षा' में शिक्षा को एक 'माल' बनाए जाने और 'परंपरागत' तौर पर शिक्षा की अवधारणा के बीच एक रिश्ते को टटोलने का प्रयास किया। डीवी ने कहा, "एक आम

स्कूली कक्षा की कल्पना करें, इसकी समय-सारिणी, वर्गीकरण के तरीके, परीक्षा और उन्नति, नियम या आदेश और मैं समझता हूँ कि आप 'संगठन के पैटर्न' के मायने को समझ जायेंगे"। डीवी (1938) के ही एक अन्य लेख, 'माई पैडागोजिक क्रिड', में वह कक्षा की संरचना पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि कक्षा की संरचना ही ऐसी होती है, जिसमें बड़ी संख्या में बच्चों को 'एक इकाई' के रूप में नियंत्रित किया जा सके। जैसे ही बच्चे अपनी रुचि से कार्य करते हैं, वह इस 'इकाई' से अलग एक व्यक्ति विशेष की तरह स्वयं को स्थापित करते हैं।

व्यवहारवाद हमारे जीवन में इस तरह जम चुका है कि हम इसके प्रति एकदम से सचेत नहीं हो पाते। इसे बदलने में बेशक एक लंबा समय लगेगा, लेकिन इस प्रक्रिया की शुरुआत संभवतः यहीं से होगी कि पहले हम यह आत्मसात कर लें कि हमारे विद्यालय की प्रक्रियाएँ व्यवहारवाद से भरी पड़ी हैं और इसे बदलने की ज़रूरत है। यद्यपि इसकी कल्पना करना मुश्किल है कि भारतीय विद्यालयों में किए जा रहे बहुप्रतिष्ठित प्रगतिशील बदलाव और नवाचारों के बावजूद क्यों ये व्यवहारवादी परिपाटियाँ हमारी विद्यालयों पर निरंतर असर डाल रही हैं। अतः यहाँ पर यह ज़रूरी हो जाता है कि हम मौजूदा प्रगतिशील आंदोलनों के स्रोतों की पड़ताल करें, जहाँ से ये निकले हैं।

प्रगतिशील बदलाव

प्रगतिशील आंदोलनों की कुछ मौलिक जानकारी जॉन डीवी के कामों से मिलती है। हालाँकि जब हम इन्हें समकालीन संदर्भ में देखते हैं तो इसका एक निर्माणवादी अर्थ भी दिखता है। मनोविज्ञान

में जीन प्याजे और लेव वाईगोत्स्की के कामों को आधार बनाकर निर्माणवादी विचार परंपरा की शुरुआत हुई। निर्माणवाद के ये दो विचारक भी दो अलग-अलग विचार परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसे व्यक्तिगत निर्माणवाद (प्याजे) और सामाजिक निर्माणवाद (वायगोत्स्की) कह सकते हैं। हालाँकि इसमें प्याजे ज्यादा प्रचलित रहे। इसका एक कारण यह हो सकता है कि वाईगोत्स्की के काम पर उनके अपने देश (रूस) में ही कई वर्षों तक प्रतिबंध लगा रहा। जब तक कि वे 'पश्चिम' के कई विचारकों द्वारा उद्धृत नहीं कर दिए गए। जबकि अन्य कारण राजनैतिक और अघोषित थे। जिस स्वरूप में 'व्यक्तिगत निर्माणवाद' का शिक्षा में प्रवेश हुआ उसका कोई एकल स्वरूप नहीं है, बल्कि जॉन डीवी के प्रयोजनवादी दर्शन (शिक्षणशास्त्र के संबंध में) के मिले-जुले प्रारूप में हुआ (गारफोर्थ, 1966) और इस मिले-जुले रूप को आमतौर पर, स्कूली संदर्भ में प्रगतिशील आंदोलन या बाल केंद्रित आंदोलन की संज्ञा दी गई। इसमें देखने वाली बात यह रही कि इस आंदोलन की एक केंद्रीय विचारधारा 'निर्माणवादी', अपने आप में व्यवहारवादी विचारधारा से पूर्णरूप से कटी हुई नहीं थी। गौरतलब है कि प्याजे के बीनेट प्रयोगशाला में 'आई-क्यू परीक्षण' पर काम के दौरान ही उनके काम की बुनियाद पड़ी (हरगनहेन व हेनली, 2013)। इस तरह के निर्माणवाद को संस्कृति विरोधी बताकर आलोचना भी हुई (ड्रिस्कॉल, 1994)।

इस आंदोलन की दूसरी विचार परंपरा डीवी से संबंधित थी, इस विचार परंपरा की आलोचना बहुधा इस आधार पर की जाती थी कि यह गैर-दृढ़ है। एपल और टिटेलबौम (2001) जॉन डीवी पर लिखे अपने लेख

में बताते हैं कि डीवी ने अमेरिकी दृढ़ आंदोलन को हमेशा एक समस्या की तरह देखा और उन्होंने हमेशा ही समाजवाद से अपने रिश्ते को नकारा। उदाहरण के लिए, उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका के शामिल होने का समर्थन किया और मार्क्सवादियों को एक 'अवैज्ञानिक युटोपिया' की तरह उद्धृत किया। वे उन गतिविधियों के प्रति उदासीन रवैया अपनाते रहे, जो दृढ़तापूर्वक सामाजिक परिवर्तन से जुड़े थे। यद्यपि इससे कोई निष्कर्ष निकालना जटिल है।

इसके अतिरिक्त समकालीन 'प्रगतिशील' आंदोलन के तीन मुख्य आयाम हैं। पहला, जब हम इसे स्कूली परिपाटियों के भीतर लाते हैं, तब यह आसानी से मौजूदा ढाँचे के अनुरूप ढल जाता है और स्वीकृत हो जाता है, यहाँ तक की स्वचालित तरीके से प्रतिक्रिया भी देता है। दूसरा, चूँकि यह 'वैज्ञानिकता' और 'बाल केंद्रीयता' के गुणों को समेटता है, जोकि मिलकर प्रगतिशील शिक्षा का आधार बनाते हैं, इसलिए इसे चुनौती देना काफ़ी मुश्किल लगता है। तीसरा, यह बाल केंद्रीयता के संबंध में एक मिथ्या धारणा को स्थापित करता है। 'बाल केंद्रीय' आंदोलन जैसा कि घोषणा करता है, दरअसल व्यवहार में यह उतना 'बाल केंद्रित' नहीं है; बल्कि यह वयस्कों की प्रभुता को चुनौती नहीं देता, न ही उससे आगे का सोचता है और न ही इसकी कल्पना करता है। सच तो यह है कि वयस्क अपनी आवश्यकता के अनुसार ही पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाते हैं, वे ही यह तय करते हैं कि क्या और कैसे पढ़ाया जाएगा, कौन-से ज्ञान का 'निर्माण' हो और कैसे, या कौन, किस ज्ञान का 'निर्माण' करे। यहाँ तक कि बच्चों का परिवेश भी वयस्कों के प्रभुत्व से घिरा

हुआ है। इसलिए वयस्क उन स्थितियों को अपने अनुसार तोड़ते-मरोड़ते रहते हैं (हॉल्ट, 1974)।

निष्कर्ष— भारतीय संदर्भ में

भारतीय संदर्भ में देखें तो पाते हैं कि इन प्रगतिशील चर्चाओं ने यह भ्रम तो स्थापित कर ही दिया है कि ये अपने काम करने के ढंग में दृढ़ हैं और सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाओं को बदलने के मार्ग सुझाते हैं। इन प्रगतिशील पहलों के मध्य जब हम भारतीय स्थितियों में शिक्षणशास्त्रीय और ज्ञानमीमांसात्मक विकल्प को तलाशते हैं, तो संदर्भ और ज़रूरत को ध्यान रखते हुए, महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा तक पहुँचते हैं। बुनियादी शिक्षा अकादमिक और राजनैतिक बहसों के हाशिए पर ही रही और पाठ्यचर्या में एक बहुत ही कम महत्वपूर्ण विषय एस.यू.पी.डब्ल्यू. (सामाजिक उपयोगी व उत्पादक कार्य) तक ही सिमट कर रह गई। हालाँकि इसका समर्थन महात्मा गांधी ने किया बावजूद इसके गांधीवादी बुनियादी शिक्षा की हालत काफ़ी चिंताजनक है। जैसा कि कुमार (1995) बताते हैं कि विषय से जुड़े ज्ञान इस पर निर्भर नहीं करते कि वे विचार कितने मौलिक हैं और उन विचारों को किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है बल्कि इस पर निर्भर करता है कि वह विचार जिस वर्ग के जीवन व आकांक्षाओं को व्यक्त करता है उसकी समाज के पदक्रम में स्थिति क्या है। कुमार (1995), गांधी के विचार को आगे बढ़ाते हुए बताते हैं कि हाथ से किए जाने वाले काम भारतीय समाज के निचले तबके का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए वे विश्वसनीय प्रमाणीकृत ज्ञान के हिस्से के तौर पर स्वीकार नहीं किए जाते। बुनियादी शिक्षा की यह दृढ़तापूर्वक

प्रवृत्ति हमें यह आधार देती है कि हम न सिर्फ़ समूची व्यवस्था में एक बदलाव की माँग करें बल्कि यह ज्ञान की अवधारणा को भी बदलने की माँग करती है ताकि ज्ञान के मौजूदा राजनैतिक-अर्थशास्त्र को चुनौती दी जा सके (सिंह, 2005)।

यह ध्यान देने की बात है कि जहाँ तक अनुशासनों व विषयों की संरचना का सवाल है उसमें बाल-केंद्रित आंदोलन व परंपरागत व्यवहारवाद में कोई फ़र्क नहीं रहा है। फिर भी यह प्रश्न उठता है कि शिक्षण-शास्त्रीय तरीके क्या हों व विषयों की प्रस्तुति (संगठन) का तरीका क्या हो अर्थात् बच्चे शिक्षक की मदद से ज्ञान का निर्माण करेंगे, लेकिन उनके ज्ञान का निर्माण विषयों के तय पाठ्यक्रम में ही होगा, जैसे— विज्ञान, वाणिज्य, कला, इत्यादि।

डीवी ने अपने विचार को प्रगतिशील कहा क्योंकि वह दृढ़तापूर्वक नहीं था। क्योंकि वह विद्यालय के मौजूदा खाके को एवं उसी निकाय को ज्यादा मानवीय, अधिक संवेदनशील व बेहतर बनाने की दिशा में प्रयास था। डीवी का गतिविधि का सिद्धांत भी विज्ञान की उसी अवधारणा पर आधारित था, जो उस समय अमेरिका में प्रचलित और मान्य था। यह कहना गलत नहीं होगा कि वह तार्किक कारणवाद के बदलाव में ही अपने प्रगतिशील विचार को रच रहे थे। यह हैरानी की बात है कि डीवी के विचारों की तुलना कई बार महात्मा गांधी के विचारों से होती है, क्योंकि उनकी बुनियादी शिक्षा में 'काम' का विचार, शिक्षाशास्त्र को ही नहीं बल्कि पश्चिमी विज्ञान और समाज विज्ञान के कई नियमों को भी चुनौती देता है। उनका विचार न केवल विद्यालय, बल्कि ज्ञान और समाज की मौजूदा अवधारणाओं

को नए रूप में गढ़ता है, जोकि पुराने बुनियादी रूप से भिन्न है, और यह सीखने-सिखाने में एक बदलाव की माँग भी करता है। इन दोनों विचारों की तुलना में प्रगतिशील और दृढ़ता का अंतर तो स्पष्ट होता ही है और कुछ हद तक यह भी स्पष्ट होता है क्यों बुनियादी शिक्षा विचार के रूप में ही रह गई? क्यों डीवी के प्रगतिशील विचार सहज रूप से पाठ्यचर्याओं का हिस्सा बन गए?

भारतीय संदर्भ में प्रगतिशील आंदोलन ज्ञान के संगठन में ही बदलाव की माँग करते हैं, न कि संस्थागत संरचना में। अर्थात् ज्ञान का अर्थ व ढाँचा वही रहें, केवल उनका आयोजन इस प्रकार हो कि बच्चे यह माने कि उन्होंने ही उस ज्ञान को रचा है और इसी क्रम में उस पूर्व-निर्धारित व पहले से निर्मित ज्ञान को आसानी से, बिना प्रतिरोध के अपना लें। परंतु जब इस प्रतिरोध को दबाना कठिन हो जाता है, तो तुरंत एक व्यवहारवादी रास्ता अपना लिया जाता है (जीरो, 2001)।

परंपरागत कक्षाओं की इस समस्या का सामना महात्मा गांधी के 'हाथ के काम' की समझ से किया जा सकता है। इस मामले में *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*, शिक्षा के ढाँचे और संस्थायी ज्ञान पर सोचने का एक अवसर देती है। भारत में बाल-केंद्रित शिक्षा और प्रगतिशील प्रयोगों के बाद आई *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* ये बताती है कि शिक्षा में गुणवत्ता की समस्या गहरी है और इसे सुलझाने के लिए व्यावसायिक शिक्षा को पाठ्यक्रम के एकीकृत हिस्से के रूप में शामिल करना होगा। साथ ही, यह नीति व्यावसायिक शिक्षा के प्रारूप में भी बदलाव की अनुशंसा करती है।

हालाँकि व्यावसायिक शिक्षा के मायने महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा से अलग हैं, पर ये नीति पाठ्यचर्या पर नए सिरे से सोचने का अवसर प्रस्तुत करती है। यह नीति शिक्षकों के संदर्भ और चुनौतियों को समझकर अध्यापक-शिक्षा में भी जरूरी बदलावों की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। जो शिक्षक प्रशिक्षण अब तक विश्वविद्यालयों से कटा रहा, उसे ये नीति उच्च शिक्षा के हिस्से के रूप में शामिल करने पर बल देती है। यह नीति नई विद्यालयों और अध्यापक-शिक्षण की पाठ्यचर्या पर नए सिरे से सोचने के अवसर देती है— जो कक्षाई नवाचार पर नई पहल की वजह बन सकते हैं।

संदर्भ

- एपल, एम. डब्ल्यू. और के. टिटेलबौम. 2001. जॉन डेवी 1859–1952. में जे. पाल्मर, एल. ब्रेस्टर और डी. कूपर (संपादक), *फिफ्टी मेजर थिंक्स ऑन एजुकेशन—फ्रॉम कन्फ्यूशियस टू डेवी* पहला संस्करण. पृष्ठ संख्या 177–181. रूटलेज, लंदन.
- कुमार, के. 1995. *शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व*. ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली.
- कुशिमारो. के.के. 2002. अगोन्स्ट रेपिटिशन—अडेसइंग रीजिस्टन्स तो एंटी-अप्रेसिव चेंज इन द प्रैक्टिसिस ऑफ़ लर्निंग, टीचिंग, सुपरवाइसिंग एंड रिसर्चइंग. *हावर्ड एजुकेशनल रिव्यू*. 72 (1), पृष्ठ संख्या 67–92.
- गारफोर्थ, एफ. डब्ल्यू. 1966. जॉन डीवी सलेक्टेड एजुकेशनल राइटिंग. शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो.
- चैपलिन जे.पी. और टी.एस. कारवेक 1974. *सिस्टम एंड थ्योरीज ऑफ़ साइकोलॉजी*. हॉल्ट रेनहार्ट एंड विंस्टन इंक. यू.एस.ए.
- जीरो, एच.ए. 2001. *थ्योरी एंड रीजिस्टन्स इन एजुकेशन—टूवर्ड्स अ पेंडागोजी फ़ॉर द अपोजिशन*. बर्गिन एंड गारवे. वेस्टपोर्ट.
- डीवी, जे. 1897. माई पैडागोजिकल क्रिड. *द स्कूल जर्नल*. 54 (3), पृष्ठ संख्या 77–80.
- 1938. *एक्स्पैरीअन्स एंड एजुकेशन*. कॉलिअर-मैकमिलन कनाडा लिमिटेड. टोरोन्टो.
- ड्रिस्कॉल, एम. पी. 1994. *साइकोलॉजी ऑफ़ लर्निंग एंड इन्स्ट्रक्शन*. एलिन और बेकन, मैसाचुसेट्स.
- नवानी, डी. 2020. बिन भय होय न प्रीत—रिजिल्यन्स ऑफ़ द फीयर बेस्ड इजामिनेशन-डिटेन्शन पॉलिसी इन द इंडियन एजुकेशन सिस्टम. रैना, जे. (संपादक). *एलेमेन्टरी एजुकेशन इन इंडिया—पॉलिसी शिफ्ट, इश्यूज एंड चलेंजेस*. पृष्ठ संख्या 108–121. एबिंगडन, लंदन.
- बाईन्डर, रॉडल्फ. एम. 1928. स्कूल, सोसायटी एंड बिहेवरिज्म. *द जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल सोशियोलॉजी*. 1 (5), पृष्ठ संख्या 266–273.
- भारत सरकार. 2009. *निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम. 2009*. नई दिल्ली. भारत सरकार
- बारिकमन्न, एस. 2019. टीचर्स बिलीफ्स एंड एजुकेशनल रिफॉर्म इन इंडिया—फ्रॉम ‘लर्नर-सेन्टर्ड’ टू ‘लर्निंग-सेन्टर्ड’ एजुकेशन. *कम्पैरिटिव एजुकेशन*. 55 (1). पृष्ठ संख्या 9–29.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. नई दिल्ली.

- मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 2020. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
- राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद. 2009. *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन—टूवर्ड्स प्रिपेयरिंग प्रोफेशनल एंड ह्यूमन टीचर*. एन.सी.टी.ई. नई दिल्ली.
- शर्मा, जी. 2015. फ्रॉम करिकुलम टू टेक्स्टबुक— पोस्ट 2005 रिवाइसड टेक्स्टबुक एंड सोशल एक्स्क्लूशन. *द प्राइमरी टीचर*. 40 (1), पृष्ठ संख्या 50–69.
- शर्मा, जी. 2021. पॉलिसी एंड रेगुलेटरी रिफॉर्म इन टीचर एजुकेशन इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड रिसर्च.
<https://oxfordre.com/education/view/10.1093/acrefore/9780190264093.001.0001/acrefore-9780190264093-e-1665>.
- सेट्टी, आर. 2014. डायलोजिसम इन इंडियाज (in India's) न्यू नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन. *कंटेम्प러리 एजुकेशन डायलॉग*. 11 (1), पृष्ठ संख्या 67–94.
- सिंह, ए. के. 2005. ज्ञान का राजनैतिक अर्थशास्त्र, *शिक्षा विमर्श*.
- स्माइल. ए. 2014. डिस्कवरींग टीचर्स विद इन इंडियन चाइल्ड-सेंटर्ड पेडागॉजी— इम्पैलिकेशन फॉर द ग्लोबल चाइल्ड सेंटर्ड अप्रोच. *कॉम्पेयर— ए जर्नल ऑफ़ कम्पैरिटिव एंड इंटरनेशनल एजुकेशन*. 44 (4), पृष्ठ संख्या 613–633.
- श्रीप्रकाश, ए. 2012. पेडागॉजी फॉर डेवलपमेंट— द पॉलिटिक्स एंड प्रैक्टिस ऑफ़ चाइल्ड सेंटर्ड एजुकेशन इन इंडिया. स्प्रिंगएर, डाक्टरेट.
- हरगनहेन, बी.आर. और टी. हेनले 2013. *एन इंट्रोडक्शन टू द हिस्ट्री ऑफ़ साइकोलॉजी* (सातवाँ संस्करण). वड्सवर्थ, बेलमोंट, सीए.
- हॉल्ट, जे. 1974. *एस्केप फ्रॉम चाइल्डहुड*. बोस्टन— ई.पी.डटन.